एक स्कूल का इतिहास
सोनी बुआ के साथ

रिनचिन एवं महीन

देवास ज़िले की बागली तहसील में हाट पीपल्या एक छोटा-सा कस्बा है। इस कस्बे में वैसे तो नए-पुराने काफी स्कूल हैं लेकिन इनमें से एक स्कूल सबसे खास है। खास इस मायने में कि तकरीबन सौ साल पुराना यह स्कूल सिर्फ लड़कियों की शिक्षा के लिए शुरू किया गया था।

हमें इस स्कूल के बारे में स्कूल जैसी ही एक विशिष्ट महिला से पता चला जिनका नाम है - सोनी भील (जेम्स) या सोनी बुआ जिस नाम से वो आज भी शहर में जानी जाती हैं। आज वे 91 वर्ष की हैं और उनके पास इस स्कूल और शहर के बारे में हमें बताने के लिए बहुत कुछ है।

स्कूल की शुरुआत

यह विद्यालय सन् 1912 में शुरू हुआ। उस समय एक कनाडियन महिला ने बच्चों को इमली के एक पेड़ के नीचे पढ़ाना शुरू किया। सन् 1921 में, पेड़ के पास एक कमरे का निर्माण किया गया और स्कूल

उसमें लगने लगा और नियमित कक्षाएं भी शुरू हो गईं। यह स्कूल विशेष रूप से लड़कियों के लिए शुरू किया गया था।

इस स्कूल के बारे में बातचीत के दौरान सोनी बुआ ने हमें बताया, ''उस ज़माने में लोग लड़कियों को स्कूल नहीं भेजना चाहते थे। उन्हें डर था कि अगर लड़कियों को स्कूल भेजा तो वे बिगड़ जाएंगी। वे सोचते थे कि अगर लड़कियों ने लिखना सीख लिया तो वे अपनी 'ससुराल' की सारी शिकायतें लिख कर अपने घर भेज देंगी। यह अच्छा नहीं माना जाता था।''

बातचीत में पता चला कि उन दिनों लोग अपने लड़कों को तो पढ़ने के लिए स्कूल भेजते थे लेकिन लड़कियों को नहीं, इसलिए उन्हें लड़कियों को स्कूल तक लाने के लिए काफी प्रयास करने पड़े। ये प्रयास क्या थे?

उन्होंने नियम बनाया कि किसी लड़के को स्कूल में दाखिला तभी मिलेगा जब उसके साथ एक लड़की भी हो। लड़कों से अपने साथ अपनी बहनों को भी स्कूल लाने के लिए कहा गया। अगर उनकी कोई बहन नहीं होती थी तो उनसे मुहल्ले की या पहचान की किसी अन्य लड़की को साथ लाने के लिए कहा जाता था। स्कूल में शिक्षा की गुणवत्ता बहुत अच्छी थी इसलिए सभी लोग यह चाहते थे कि उनके बेटे वहीं पढ़ें और इस कायदे के चलते उनके साथ लड़कियां भी स्कूल आने लगीं। इस तरह से स्कूल में लड़के और लड़कियों की संख्या लगभग बराबर ही होती थी। यह अच्छा नियम है ना? इस तरह से स्कूल ने शहर में बालिकाओं की शिक्षा को प्रारम्भ किया।

हमने कस्बे के कुछ लोगों से बात की। एक महाशय ने बताया कि जब वे पढ़ने स्कूल जाते थे तो अपनी बहन नहीं बल्कि उनके मुहल्ले में रहने वाली एक लड़की के साथ जाते थे। वे दोनों एक साथ जाते थे। उन्हें वास्तव में यह सोचकर बड़ा मज़ा आ रहा था कि केवल उस लड़की के कारण ही उन्हें उस स्कूल में दाखिला मिला था। उन्हें लगा कि लिखकर उसे धन्यवाद देना चाहिए। लेकिन उन्हें ज्ञात नहीं था कि अब वह कहां होगी; अफसोस की बात है कि लड़कियों को शादी के बाद अपना घर छोड़ देना पड़ता है।

सभी बच्चों के लिए स्कूल

स्कूल में उन दलित बच्चों को भी आने के लिए प्रेरित किया जाता था जिन्हें उस समय (आजकल भी, यद्यपि अस्पृश्यता संविधान द्वारा प्रतिबन्धित है) अस्पृश्य माना जाता था। एक व्यक्ति को विशेष रूप से इसीलिए रखा जाता था कि वह घर-घर जाकर इन बच्चों को स्कूल लाए। जल्दी ही इन बच्चों की संख्या में वृद्धि हो गई जिससे ऊंची जाति के लोग चिंतित होने लगे। वे नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे इन बच्चों के साथ पढ़ें। इसलिए उन्होंने स्कूल को एक पत्र लिखा जिसमें अध्यापकों से दलित बच्चों को पढ़ाना बन्द करने के लिए कहा गया था। उन्होंने धमकी भी दी कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो वे अपने बच्चों को स्कूल से निकाल लेंगे। इस पर स्कूल ने दो टूक जवाब दिया - ''यदि आप अपने बच्चों को निकालना चाहते हैं तो ज़रूर निकाल लीजिए, लेकिन हम इन लोगों से स्कूल

अपने परिवार के साथ आराम के दो पल बिताती सोनी बुआ।

छोड़ कर जाने के लिए नहीं कहेंगे। हम सभी बच्चों को पढ़ाएंगे, चाहे उनकी जाति कुछ भी हो।''

कुछ ऊंची जाति के लोगों ने अपने बच्चों को निकाल भी लिया, परंतु स्कूल में शिक्षण का कार्य निरंतर जारी रहा। शीघ्र ही उन अभिभावकों को पता चल गया कि बच्चों को स्कूल से हटा कर उन्होंने अपना ही नुकसान किया है। कुछ समय के अंदर ही उन्होंने फिर से अपने बच्चों को उसी स्कूल में भेजना शुरू कर दिया। यह एक महत्वपूर्ण सफलता थी।

सोनी बुआ बताती है - ''एक बार स्कूल में आ जाने के बाद बच्चे आपस में छुआ-छूत का व्यवहार कभी नहीं करते थे। वे साथ खाते थे, साथ पढ़ते थे, साथ खेलते थे और बिना किसी भेदभाव के एक ही नल से पानी पीते थे। यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन था। हो सकता है घर में बच्चों को अलग-अलग जातियों के अन्तर के बारे में बताया जाता हो लेकिन हमने स्कूल में इस प्रकार की बातों की अनुमति कभी नहीं दी।''

स्कूल के एक शिक्षक जिसके पिता उस समय विद्यालय के एक दलित विद्यार्थी रह चुके थे, ने बताया कि स्कूल की इस प्रकार की नीति ने उन्हें सहयोग दिया। ''इससे हमें पढ़ने की प्रेरणा मिली, क्योंकि मेरे दादा, मेरी बुआ और मेरे पिता भी यहीं पढ़े थे। मैं भी यहां पढ़ा। इससे हमारे परिवार में पढ़ने की परंपरा शुरू हो गई।''

उस समय लोगों ने बहुत-सी चीज़ों को वर्जित कर दिया था, गांवों में स्त्रियों को पढ़ने की अनुमति नहीं थी, दलित

स्त्रियां सड़क पर चप्पल पहन कर चल भी नहीं सकती थीं। उन्हें चप्पल उतार कर चलना पड़ता था। दलित बच्चों को अलग पंक्ति में बिठाया जाता था और उन्हें ऊंची जाति वाले बच्चों के घड़े से पानी पीने की इजाज़त नहीं थी। इस भेदभावपूर्ण अपमानजनक व्यवहार के कारण बहुत-से बच्चे स्कूल नहीं जाते थे।

94 वर्षों के बाद आज भी यह विद्यालय चल रहा है। अब यह मिडिल स्कूल बन गया है। स्कूल में चार कमरे और एक हॉल है। दुर्भाग्य से इमली का वह ऐतिहासिक पेड़ जिसके नीचे स्कूल प्रारंभ हुआ था, उसे काटना पड़ा क्योंकि वह बहुत कमज़ोर हो गया था और उसके गिरने का खतरा था। स्कूल में अभी भी लड़के और लड़कियों की संख्या समान है और यहां सभी जातियों और धर्मों के बच्चे अध्ययन कर रहे हैं। स्कूल फीस कम रखने की कोशिश करता है ताकि सभी बच्चों को पढ़ने के मौके मिल सकें।

इस समय हाट पीपल्या में लगभग 30 स्कूल हैं। कुछ सरकारी हैं और कुछ निजी, लेकिन इस स्कूल का यहां के इतिहास में विशिष्ट स्थान है।

सोनी बुआ की ज़ुबानी

आइए अब कुछ चर्चा सोनी बुआ के बारे में भी करते हैं।

सोनी बुआ, जिनका नाम सोनी भील था, वर्ष 1936 में 20 वर्ष की उम्र में हाट पीपल्या आईं। वे यहां रतलाम से इतनी दूर केवल पढ़ाने के लिए आई थी। वे कक्षा 6 की पढ़ाई पूरी करने के बाद, दो वर्ष का शिक्षक प्रशिक्षण इंदौर से करके हाट पीपल्या आई थीं। इस प्रशिक्षण को

मसीही माध्यमिक स्कूल सायकल स्टेंड का एक दृश्य।

पढ़ाई में मशगूल एक कक्षा।

एंग्लो वर्नाक्यूलर ट्रेनिंग कहा जाता था। वहां उन्होंने तीन भाषाएं सीखीं - हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी। उन्होंने स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया। सुनाने के लिए उनके पास उस समय की बहुत-सी कहानियां हैं -

''मैं जब यहां आई, यह शहर लगभग जंगल जैसा था, न सड़कें थीं, न बसें और न ही बिजली। अब तो यह बहुत बदल गया है। अब तो इतनी सारी दुकानें हैं, पक्की सड़कें हैं, टेलीफोन और यहां तक कि मोबाइल फोन भी हैं। पहले लोग या तो तांगा-गाड़ी से यात्रा करते थे या फिर पैदल ही जाते थे। साबुन जैसे सामान हम इंदौर आने-जाने वालों से कहकर मंगवाते थे। एक यात्रा करने वाला विक्रेता था जो हमें ये सब चीज़ें लाकर दे देता था।''

उन दिनों मुद्रा के रूप में विक्टोरिया के सिक्के चलते थे, आजकल की तरह रुपए और नोट नहीं। वे बताती हैं कि कैसे असली और नकली विक्टोरिया सिक्कों की जांच की जाती थी। सिक्के को पत्थर पर पटका जाता था, यदि उसकी खनक स्पष्ट होती तो समझा जाता था कि वह असली है। यदि खनक मंद और अस्पष्ट होती थी तो जान लिया जाता था कि इसमें कोई मिलावट की गई है।

सोनी बुआ कस्बे के अधिकांश लोगों को उनके नाम से जानती हैं। पास से गुज़रते हुए या उनके घर आने वाले लोगों की ओर इशारा कर वे कहती हैं, ''मैंने उसके पिता और बुआ को पढ़ाया है, यहां तक कि दादा और दादी बुआ को भी।'' वे आपको बता सकती हैं कि किस वर्ष में क्या हुआ और जब शहर के सम्मानीय व्यक्ति उनके शिष्य थे तो उन्होंने क्या-क्या किया, ''वह बहुत शैतान था, वह बहुत परिश्रमी था और वह बहुत शर्माता था .....'' आदि आदि। बाद की पीढ़ी की अनेक लड़कियां जो उनकी छात्राएं थीं अब नर्सें और शिक्षिकाएं हैं।

जब वे हाट पीपल्या आई थीं, तब यहां केवल एक सरकारी स्कूल था और एक मिशन स्कूल। बाद में एक जैन विद्यालय खुला। फिर और स्कूल। अब तो यहां बहुत से स्कूल हैं। हाट पीपल्या में अब एक जूनियर कॉलेज और एक स्नातक स्तर का कॉलेज भी है।

सोनी बुआ के कई भूतपूर्व छात्र शहर में रहते हैं और विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं, उनमें बहुत-से ऐसे भी हैं जो दूसरी जगह काम करने के लिए शहर छोड़कर चले गए हैं। बहुत-सी छात्राएं अब शहर में नहीं हैं। शादी के बाद वे अन्यत्र चली गई हैं। हमें एक पुरानी छात्रा मिली जो अपने भाई के घर मिलने आई थी। वह पास के एक कस्बे में रहती है और खुद भी अब दादी बन गई है। यद्यपि स्वयं वह पांचवीं कक्षा के बाद नहीं पढ़ सकी (स्कूल तब पांचवीं तक ही था) लेकिन वह महसूस करती है कि शिक्षित होने से उसे कई प्रकार से लाभ हुआ है। उसने अपनी बेटियों को स्कूल भेजा और वे जितना पढ़ सकती थीं उन्हें पढ़ाया। दादी का मानना है कि समय बदल रहा है और धीरे-धीरे लड़कियों की शिक्षा के प्रति भी लोगों के दृष्टिकोण में अंतर आ रहा है। अब पहले जैसी बात नहीं है। लड़कियां केवल पढ़ती भर नहीं हैं बल्कि मां-बाप की तीव्र इच्छा रहती है कि वे ऊंची शिक्षा प्राप्त करें जिससे उन्हें अच्छी नौकरी मिले।

अब फिर से वापस सोनी बुआ की बात करते हैं। वे अपने बारे में एक बहुत मज़ेदार कहानी बताती हैं। सोनी बुआ जब हाट पीपल्या आई थीं, तब उन्होंने कक्षा 6 तक की पढ़ाई की थी। बाद में जब विदेशी चले गए और शिक्षा का प्रसार होने लगा तो शिक्षकों को भी अधिक शिक्षित होने की ज़रूरत महसूस हुई। इसलिए 1965 या 1966 में वे ग्यारहवीं की परीक्षा में बैठीं।

उन्होंने अपने आप अध्ययन कर परीक्षा की तैयारी की। परीक्षा के दिन वे अपने से उम्र में बहुत छोटे विद्यार्थियों के बीच बैठीं, उनमें से कुछ को तो उन्होंने पढ़ाया भी था। वह दृश्य कितना मज़ेदार रहा होगा! विद्यार्थी क्योंकि उन्हें बहुत प्यार करते थे इसलिए कागज़ की चिटों पर उत्तर लिख-लिखकर उनकी ओर फेंक कर मदद करने की कोशिश कर रहे थे। परीक्षकों ने भी दूसरी ओर मुंह फेरने का निर्णय लिया था क्योंकि वे भी चाहते थे कि बुआ पास हो जाएं। लेकिन बुआ ने नकल करने से इंकार कर दिया। वे एक गलत उदाहरण स्थापित नहीं करना चाहती थीं और न ही यह चाहती थीं कि बाद में कोई कहे कि वे किसी की मदद से पास हुई हैं। इसलिए उन्होंने चिटों पर कोई ध्यान नहीं दिया और परीक्षा में स्वयं उत्तर लिखे और पास हो गईं। ये कहानी बताते हुए वे खूब हंसती हैं। वे बड़े प्रेम और स्वाभिमान से उन दिनों को याद करती हैं।

वे बताती हैं कि मिशन स्कूल में प्रवेश का एक नियम था। केवल 6 वर्ष से ऊपर के बच्चों को ही प्रवेश मिलता था। उस समय ऐसे बहुत कम लिखित प्रमाण होते थे जिनसे उम्र को जांचा जा सके। अतः शिक्षक इसके लिए एक निराले तरीके का इस्तेमाल करते थे। वे लड़के या लड़की से कहते थे कि अपना दाहिना हाथ सिर

के ऊपर से ले जाकर बायां कान पकड़ें (गर्दन के पीछे या चेहरे के सामने से नहीं केवल सिर के ऊपर से)। जो बच्चे 6 या उससे अधिक आयु के होते थे वे ही सिर के ऊपर से कान पकड़ सकते थे। इस प्रकार जिस बच्चे की उम्र के बारे में संदेह होता था उसे कान पकड़ने का टेस्ट पास करना पड़ता था।

पढ़ाने के नए तरीके

सोनी बुआ के पढ़ाने की शैली को भी सब याद करते हैं। वे कई मज़ेदार तरीकों के बारे में बताती हैं जो उन्होंने अपने छात्रों को पढ़ाने के लिए इस्तेमाल किए थे। वे किसी बड़े वाक्य में से शब्दों और मुहावरों को काट कर अलग-अलग गत्तों पर चिपका लेती थीं। फिर बच्चों को पूरा वाक्य बनाने के लिए उन्हें सही क्रम में पास-पास रखना होता था। उदाहरण के लिए -

काली जैसी मैना ने

एक दाना पाया

वो जौ का दाना था

फिर बच्चों को इन अंशों को आपस में एक-दूसरे से मिलाकर अपनी पाठ्य-पुस्तक के अनुसार वाक्य बनाना होता था।

उनके पास इस प्रकार की सामग्री से भरा एक बक्सा था जिसका वे प्रायः उपयोग करती थीं। इसमें रंग-बिरंगे कार्ड और चित्र भी थे जो उन्होंने पढ़ाने के लिए तैयार किए थे।

सोनी बुआ हमें बताती हैं कि वे अब उर्दू भूल चुकी हैं क्योंकि अब हाट पीपल्या के स्कूलों में उर्दू नहीं पढ़ाई जाती; परंतु उन्हें गर्व है कि वे उस भाषा को जानती थीं। वे कहती हैं - ''यह एक दिलचस्प भाषा है, इसकी लिपि भिन्न है, यह (हिन्दी या अंग्रेज़ी लेखन से विपरीत) स्लेट या पृष्ठ के दाहिने ओर से लिखना शुरू की जाती है।''

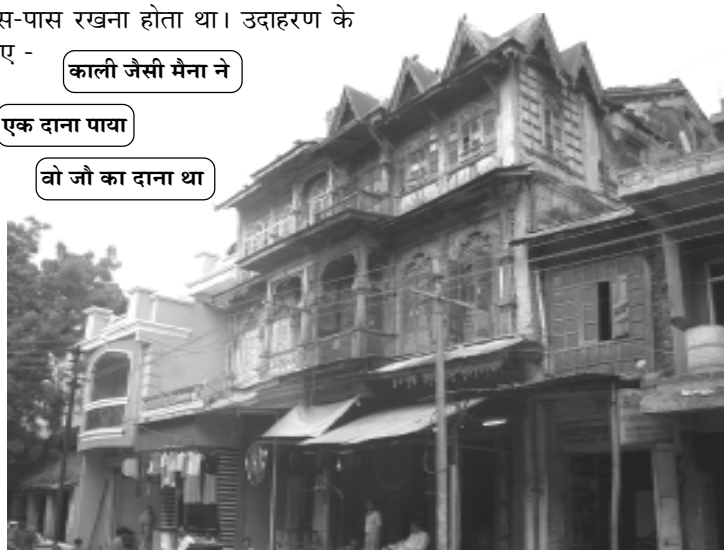

हाट पीपल्या कस्बे में नई-पुरानी इमारतों का मंज़र।

सोनी बुआ खाना बनाने का शौक पूरा करती हुई।

उन्होंने 47 वर्ष तक स्कूल में पढ़ाया। वे स्कूल की प्राचार्या बनकर सेवा-निवृत्त हुईं; वे ऐसी प्रथम स्थानीय महिला थीं।

और चलते-चलते ..... सोनी बुआ को चुटकुलों और शेरो-शायरी का बहुत शौक है, कुछ लोग इसे कट्टेबाजी भी कहते हैं। लीजिए उनकी ओर से प्रस्तुत हैं ये दो अंश -

प्यास न जाने धोबी घाट,
भूख न जाने जूठा भात,
नींद न जाने टूटी खाट,
प्यार न जाने जात-पांत।

उन्हें खाने का भी बहुत शौक है - खाना बनाने का भी और खाने का भी। इसलिए खाने पर तो कुछ होना ही चाहिए। मालवा में खाने के संदर्भ में वे कहती हैं :

बाटी कहे मैं आवन-जावन,
रोटी कहे मैं खेत पहुंचावन,
चावल कहे मैं नरम खाना,
मेरे भरोसे गांव मत जाना।

रिनचिन: विविध सामाजिक मुद्दों पर काम करती हैं। भोपाल में रहती हैं।
महीन: शोध एवं दस्तावेजीकरण का काम करती हैं। भोपाल में निवास।
अंग्रेज़ी से अनुवाद: उषा चौधरी: पिछले पैंतीस वर्षों से विभिन्न शिक्षण संस्थाओं से संबद्ध व शिक्षा के नए आयामों के प्रति सजग। भोपाल में रहती हैं।
सभी फोटोग्राफ: महीन एवं रिनचिन।
सराय स्वतंत्र फैलोशिप प्रोग्राम (2006) के तहत किए गए अध्ययन के दौरान इकट्टे किए गए कथानकों से यह लेख तैयार किया गया है।